शब्द–ब्रह्म
ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
17 फरवरी 2013

साहित्य और समाज का अन्तर्सम्बंध

प्रो. पुष्पेन्द्र दुबे
महाराजा रणजीतसिंह कॉलेज आफ प्रोफेशनल साइंसेस, इन्दौर

साहित्य और समाज के सम्बन्धों की चर्चा आज जोरों पर है। वास्तव में मनुष्य जीवन के रागात्मक विकास का दूसरा नाम साहित्य है। इसलिए साहित्य और समाज के पारस्परिक सम्बन्ध की उपेक्षा नहीं की जा सकती। साहित्य समष्टिगत चेतना है। इस कारण से साहित्य और समाज का घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। ऐसे अनेक उदाहरणों से यह सिद्ध किया जा सकता है कि समाज को बदलने का काम साहित्य ही करता है। ''हमारी संस्कृति ने साहित्यिकों और कवियों को ऊंचा स्थान दिया है। यहां पर जिनकी धार्मिक सत्ता चली, वे सब बहुत बड़े कवि थे। आज तक हजारों वर्षों से वाल्मीकि, व्यास, शुक की जितनी सत्ता चली, उतनी और किसी की सत्ता नहीं चली। और उनकी यह सत्ता केवल धर्म तक ही सीमित नहीं रही, ऐहिक–पारलौकिक और पारमार्थिक जीवन पर भी रही। यानी कुल जीवन पर उनकी सत्ता है।''(1)

इस सृष्टि के आरंभ से अब तक मनुष्य के परिष्कृत हृदय ने उन्नत कोटि के साहित्य की रचना की है और ऐसे साहित्य ने करोड़ों लोगों के जीवन की दिशा और दशा बदलने काम काम किया है। ऐसे साहित्य को समाज ने शाश्वत साहित्य की संज्ञा से अभिहित किया है। समाज को संस्कृत बनाने का काम साहित्य ही करता है। उसमें सौंदर्य बोध जाग्रत करता है। यहां तक कि व्यक्ति को अनुशासित और मर्यादित भी साहित्य ही करता है। समाज को मोड़ देने में ''विज्ञान–शक्ति, आत्मज्ञान–शक्ति, साहित्य–शक्ति से विशेष मदद मिलती है। इन्हीं की छाप समाज और व्यक्ति के हृदय पर पड़ती है।''(2)

आज बहुधा ऐसा लगता है कि विज्ञान और तकनीक के युग में साहित्य समाज से दूर हो गया है। कविता के मरने की घोषणा की जा रही है। समाज को साहित्य से कोई सरोकार नहीं रह गया है तो प्रश्न यह भी है कि साहित्य को समाज की चिंता है क्या ? भूमंडलीकरण के दौर में सब कुछ बाजार हो गया है। साहित्य भी इससे अछूता नहीं रह गया है। इसलिए आज के साहित्य को एक नयी संज्ञा दी गयी है 'बाजारू साहित्य।' लेकिन ऐसा तो पहले भी रहा है जब साहित्यकार राज्याश्रय में अपनी साहित्य साधना करते थे और उसे दरबारी साहित्य कहा गया। उस वक्त जिन्होंने राज्याश्रय निरपेक्ष होकर स्वांतःसुखाय जीवन साधना की उनका साहित्य आज भी समाज को दिशा प्रदान करने में समर्थ है।

समाज के यथार्थ चित्रण का नारा वास्तव में 'बाजार' ने ही दिया है। मिथिलेश्वर ने अपनी पुस्तक 'साहित्य की सामाजिकता में लिखा है, ''अब भी समाज को साहित्य ही बचा सकता है। निरंतर संवेदनहीन, भोगवादी, अराजक और बाजारू होते संसार को फिर से साहित्य ही मानवीय और मर्यादित कर सकता है।'' बाजार का आदर्श स्थितियों से सदा विरोध रहा है, जबकि साहित्य की आधारशिला आदर्श है। ''जिस साहित्य में समाज के यथार्थ रूप से अधिक आदर्श रूप की प्रतिष्ठा होती है, वही साहित्य अधिक महान होता है।''(3)

आज के साहित्यकारों का मन समाज के यथार्थ चित्रण में अधिक रमा है। मन के स्तर की रचनाएं होने से एक समय बाद वे रचनाएं कहीं विलुप्त हो जाती हैं। जब भी समाज के सामने जीवन के अनेकानेक क्षेत्रों से संबंधित समस्याएं खड़ी होती हैं, नैतिक प्रश्न उपस्थित होते हैं, तब वह शाश्वत साहित्य की ओर ही दृष्टिपात करता है। समाज अपने विकासक्रम में शब्दब्रह्म की उपासना ही करता रहा है। ''लोक जीवन बदलना या उस पर स्थायी असर डालना उन्हीं से बन सका, जिन्होंने या तो कुछ आध्यात्मिक खोज की थी या कुछ वैज्ञानिक खोज। विज्ञान का असर दुनिया के जीवन पर हुआ है और आगे भी होगा। आत्मज्ञान का असर भी अब तक के इतिहास में बहुत हुआ है और आगे भी होने वाला है। लोकजीवन पर असर डालने वाली एक तीसरी शक्ति है और वह है साहित्य की शक्ति।''(4)

हजारों वर्षों से वैदिक ऋचाएं दुनिया में गूंज रही हैं। भले ही उनके अर्थ न मालूम हों, परंतु प्रतिदिन करोड़ों मनुष्य किसी न किसी मंत्र का पारायण करते हैं। उपनिषदों की कथाएं और उनमें निहित सत्य आबाल–वृद्ध सभी को लुभाता है। श्रीमद्भगवदगीता जैसा ग्रंथ तो समाज की अमूल्य निधि है, जिसमें निष्फल कर्म करने की प्रेरणा दी गई है। श्रेष्ठ साहित्यकार युगानुरूप साहित्य रचना कर समाज को गति देते रहते हैं। वेदव्यास विरचित 'भागवत' की कथा सुनने के लिए हजारों लोग आज भी लालायित रहते हैं। कबीर की वाणी को सुनकर व्यक्ति दुनिया की बुराइयों को देखना भूल स्वयं को ठीक करने में लग जाता है। जो पुराने समाज की बुराई छोड़कर अच्छाई लेता है और उसे नये समाज में नये विचार के रूप में प्रवेश कराता है, वह साहित्यिक होता है। सूर के भक्ति गीतों को सुन समाज झूमने लगता है। मीरा के भजनों को गाकर वह मुक्तिपथ पर अग्रसर हो जाता है। ज्ञानेश्वर महाराज, तुकाराम, नरसिंह मेहता, पोतन्ना, माधवदेव ऐसे कितने नाम लें, जिनके साहित्य का पारायण कर समाज ने उच्चादर्श की ओर अपना कदम बढ़ाया। ''वाल्मीकि, व्यास, शेक्सपीयर, होमर, शंकराचार्य, रवींद्रनाथ ऐसे लोग दुनिया में आए और दुनिया को ऐसी चीज भी दे गए, जो सदा के लिए उसकी मदद में आए। जब शांति की जरूरत थी, तब शांति देने वाली चीज उन्होंने दी। जब उत्साह की जरूरत थी तब उत्साह देने वाली चीज दी। जब आशा की जरूरत थी, तब आशा देने वाली चीज दी। जिस समाज को जिस चीज की जरूरत थी, उसे लोगों के पास इन लोगों ने ही पहुंचाया। इससे समाज का जीवन बदला। जो बड़ी–बड़ी क्रांतियां हुईं, उसके पीछे विचारक और साहित्यिक थे, जिन्हें क्रांतदर्शन था।''(5)

इसी बात को मुंशी प्रेमचंद ने इस इस प्रकार व्यक्त किया है, ''साहित्यकार बहुधा अपने देशकाल से प्रभावित होता है। जब कोई लहर देश में उठती है तो साहित्यकार के लिए उससे अविचलित रहना असंभव हो जाता है। उसकी विशाल आत्मा अपने देश–बंधुओं के कष्टों से विकल हो उठती है और इस तीव्र विकलता में वह रो उठता है, पर उसके रुदन में व्यापकता होती है। वह स्वदेश का होकर भी सार्वभौमिक होता है।''(6)

गोस्वामी तुलसीदास जी के 'बैर न कर काहू सन कोई । राम प्रताप विषमता खोई।। के आदर्श तक हम पहुंचना चाहते हैं। एक ओर तो इस प्रकार का साहित्य है जो आदर्श की ऊंची से ऊंची कल्पना हमारे सामने प्रस्तुत करता है तो दूसरी ओर ऐसा साहित्य भी है जो समाज की यथास्थिति का चित्रण कर

अपनी इतिश्री समझ लेता है। प्राचीन काल की वैदिक ऋचाओं के गायक, उपनिषद के उन्नायक, पुराणों के रचयिता, महाभारतकार मार्ग को ढूंढने वालों की श्रेणी के साहित्यकार हैं। इसलिए वे आज भी समाज के साथ घुलेमिले हैं। 'भागवत' की तो भाषा ही है कि जो जनताधविप्लव होगा, यानी जो वाक्समूह जनता के पापों को धोनेवाला होगा, वही साहित्य कहलाने लायक होगा। भागवत ने इतना ऊंचा आदर्श हमारे सामने रखा।

क्योंकि ''साहित्यिकों की हमेशा आगे की तरफ दृष्टि रहती है। दो प्रकार के साहित्यिक होते हैं। एक वे, जो जिस समाज में रहता है, उस समाज की परिस्थिति का चित्र खड़ा करते हैं। दूसरे वे, जो आगे मानव बनने वाला है, भविष्य का मानव, उसका चित्र खींचते हैं। एक को 'रिअलिस्टिक' और दूसरे को 'आइडियलिस्टिक' कहते हैं। जो साहित्यिक जमाने में बद्ध रहते हैं, वे कालात्मा की परीक्षा में समाप्त होते हैं, टिकते नहीं। जब तक वह समाज, जिसमें वे पैदा हुए हैं चलता है, तब तक वे चलते हैं। उसके आगे नहीं। वाल्मीकि आज भी पढ़ा जाता है और बाकी सामान्य साहित्य जिस जमाने में पैदा हुआ उसीमें खत्म हो जाता है। हिंदुस्तान की किसी भी भाषा में आज कौन–सा ऐसा साहित्यिक है, जो घर–घर पढ़ा जाता है ? इसका क्या कारण है ? इसका कारण यह है कि जो शाश्वत साहित्यिक होता है, उसकी विश्वव्यापी प्रतिभा होती है।''[7]

महाभारत में तो दुनिया का समाजशास्त्र आ गया है। उसे पढ़ते समय यह पता ही नहीं चलता कि मुख्य पात्र कौन है ? उसके पात्र भारतीय जनजीवन में घुलमिल गए हैं। हम किसी की बुराई और किसी की अच्छाई को देखकर महाभारत के पात्रों का आरोपण कर देते हैं। वेदव्यास ने तो यह लिख दिया है कि 'जो महाभारत में है, वह दुनिया में है और जो महाभारत में नहीं है, वह दुनिया में नहीं है।' ''मुख्य पात्र कृष्ण है कि भीष्म है, दुर्योधन है कि अर्जुन है, युधिष्ठिर है कि कर्ण है, द्रौपदी है कि गांधारी है, कुछ कह नहीं सकते। कितने पात्र ध्यान खींचते हैं! कितने आकर्षक पात्र खड़े कर दिए हैं! किसी दूसरे उपन्यास में ऐसा नहीं होता। रामायण में भी दूसरे पात्र अवश्य हैं, जो चित्त को खींचते हैं। लेकिन उसमें राम ही मुख्य पात्र है, इसमें शक नहीं होता। महाभारत में जो काव्य है, वह रामायण में नहीं। महाभारत में कृष्णायन नहीं, न पांडवायन है। वह अपना है सो है, और उसका हरएक चित्त पर असर होता है। उत्तम साहित्यिक और कवि सामने वाले के चित्त पर असर करेगा, और असर डालते हुए गुण–वृद्धि करेगा।''[8]

आज हम देखते हैं कि समाज के तरीके से साहित्य का सृजन हो रहा है। आज साहित्य यथार्थ के दुष्चक्र में फंस गया है। जो कुछ हमारे सामने घटित हो रहा है, उसीका चित्रण साहित्य में हो रहा है। इसलिए ऐसा साहित्य जुगनू के समान चमक दिखाकर गायब हो जाता है। मुंशी प्रेमचंद आज भी हमारे सामने कसौटी के रूप में मौजूद हैं। जिनके साहित्य के बारे में यह कहा गया है कि यदि किसी कारण से 1930 से लगाकर 1936 तक का भारत का इतिहास मिट भी जाता है तो मुंशी प्रेमचंद के साहित्य से उस समय के भारत का इतिहास लिखा जा सकता है। आज इतने समय बाद भी 'गोदान' का पात्र होरी देश के लाखों गांवों में मिल जाएगा। 'कर्मभूमि' की भूमि समस्या आज भी हमारे सामने मुंह बाए खड़ी है। 'रंगभूमि' का पूंजीपति वर्ग गरीबों की जमीन पर दांत गड़ाए बैठा है। 'बूढ़ी काकी' आज

शब्द–ब्रह्म
ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
17 फरवरी 2013

वृद्धाश्रम में अपने जीने का आसरा ढूंढ रही है। दंगों के माहौल में आज भी 'काबुलीवाला' बच्चों को उनके घर सही–सलामत पहुंचा रहा है। 'नमक का दरोगा' का भ्रष्टाचार आज देश के सिर चढ़कर बोल रहा है। दीवान बनने के सपने देखने वाला युवावर्ग नैतिक 'परीक्षा' में पूरी तरह अनुत्तीर्ण हो रहा है। गांव में बसने वाला 'पंचपरमेश्वर' आधुनिक कोर्ट–कचहरियों में गुम हो गया है। हजारों 'जालपाओं' की गहनों की लालसापूर्ति में लगे हजारों 'रमानाथ' गरीबों का शोषण कर रहे हैं। समाज की दुरंगी चालों के वशीभूत होकर ही साहित्यकार 'झूठा–सच' लिखने पर विवश है। तभी उसके मुख से बरबस ही यह शब्द निकल जाते हैं, 'सबहिं नचावत राम गोसाईं'।

आज हिन्दी समाज में हिन्दी साहित्य का स्थान कम होता जा रहा है। साहित्य की उपेक्षा का जीवंत प्रमाण हमारा वर्तमान परिदृश्य है। मनुष्य को संवेदनशील, त्यागी, उत्साही, कर्मठ, ईमानदार, न्यायप्रिय और परोपकारी साहित्य ही बनाता है। मनुष्य के व्यक्तित्व निर्माण में साहित्य से बड़ा घटक और कुछ हो ही नहीं सकता। ''यह सच है कि समाज बदलता रहता है। फिर भी कुछ बातें नहीं बदलती। आज हमारी पोशाक बदल गयी है। प्राचीन ऋषि हमारा रूप देखकर यह नहीं पहचान सकेंगे कि यह अपनी परंपरा का मनुष्य है। आज हम उनकी भाषा नहीं बोलते। इतना होते हुए भी उस ऋषि का वाक्य हमें रिझाता है, हंसाता है और हमारे काम आता है। कारण उसमें कुछ अंश ऐसा है, जो कभी नहीं बदलता। कुछ अंश ऐसा अवश्य होता है जो बारहमासी फूलों की तरह सदैव तरोताजा रहता है। इस तरह मानव का अंतरभाव, जीवभाव, जो पहले था, आज भी बना हुआ है। जिस साहित्यिक के साहित्य में उस अंश का प्राधान्येन ग्रहण होता है, वही साहित्य शाश्वत होता है, ऐसा अनुभव है।''[9]

वाल्मीकि से लगाकर आधुनिक युग में महात्मा गांधी तक, सभी पर साहित्य का जबर्दस्त असर हुआ है। महात्मा गांधी ने बाल्यकाल में राजा हरिश्चंद्र नाटक देखा और वहां से उन्हें सत्य की प्रेरणा मिली। इस सत्य के आधार से उन्होंने करोड़ों दिलों पर राज किया। समाज में यह तथ्य तो स्थापित था कि परमेश्वर सत्य है, परंतु गांधीजी ने अपने जीवनानुभव से कहा कि सत्य ही परमेश्वर है। ''राष्ट्र के साथ–साथ साहित्य भी उन्नति या अवनति करता है। उसी प्रकार साहित्य जीवन को भी उन्नत या अवनत कर सकता है। गांधीजी वैसे तो कोई साहित्यिक नहीं माने जाते थे, फिर भी उनके प्रभाव के कारण हिंदुस्तान की हर भाषा का साहित्य उन्नत हुआ है। दूसरा उदाहरण रवींद्रनाथ ठाकुर का है। उनकी सद्भावना और विश्व–वृत्ति के कारण समाज ऊंचा उठा है। कवि जब महात्मा होते हैं, तब उनका असर जीवन पर पड़ता है।''[10]

आज पूरा भारतीय समाज विश्वकवि रवींद्रनाथ द्वारा विरचित 'जन गण मन' के लिए एक साथ उठ खड़ा होता है। यहां बंकिमचंद्र चटर्जी को कैसे भूल सकते हैं। उनके 'वंदे मातरम्' गीत को गाकर न जाने कितने स्वतंत्रता सेनानी हंसते–हंसते फांसी के फंदे पर झूल गए। लोकमान्य बालगंगाधर तिळक का प्रसिद्ध मंत्र 'स्वराज्य मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है, उसे मैं लेकर रहूंगा', नेताजी सुभाषचंद्र बोस का वाक्य 'तुम मुझे खून दो, मैं तुम्हें आजादी दूंगा' और आजादी के बाद हमारे प्रधानमंत्री लाल बहादुर शास्त्री के एक नारे 'जयजवान, जयकिसान' ने देश में हरित क्रांति की लहर पैदा कर दी। शास्त्रीजी ने केवल एक आह्वान किया कि

देश में अनाज की कमी है और लोगों को एक दिन उपवास करना चाहिए' इस देश की जनता ने इसे शिरोधार्य किया। इन सभी के पीछे सत्य का बल था। ''काव्य सत्य का प्रयोग है। जिसके जीवन में जितना सत्य उतरा होगा, उतना ही काव्य उसमें प्रकट होगा। फिर वह उस काव्य को शब्दों में प्रकट करे या न करे। साहित्यिक सच्चा होता है। सच्चाई के बिना साहित्य नहीं हो सकता। जो अपने हृदय की अनुभूति के साथ निष्ठावान नहीं होता, उसके मुंह से निकलने वाला शब्द जानवान, प्राणवान नहीं होता।''(11)

आज समाज के सामने इसी प्राणवान, जानवान शब्द का संकट है। आज साहित्यकार के शब्द और जीवन में कोई तालमेल नहीं है। आचरण से ही शब्दों में ताकत आती है। चिंतन को खाद–पानी मिलता है। काम–क्रोध–लोभ–मोह में लिपटे साहित्यकारों का साहित्य समाज को किस प्रकार दिशा दे सकता है ? आज साहित्य और समाज का अंतर्सम्बन्ध इसी रूप में उजागर हो रहा है कि जैसा समाज में दिखाई दे रहा है, उसीका वर्णन नाना प्रकार से किया जा रहा है। समाज में असत्य है, अशांति है, लूट है, पाखण्ड है, उत्पीड़न है, राजनीति है अर्थात जितनी प्रकार की बुराइयां हैं, उन सब का चित्रण साहित्य में विभिन्न प्रकार से हो रहा है। साहित्यकार इसका प्रयोग कच्चे माल की तरह कर रहा है। यह स्वाभाविक भी है। साहित्यिक का ध्यान सृष्टि की सभी बातों की ओर जाता है। वह भला–बुरा, गुप्त–प्रकट, वर्तमान और भविष्य, सभी चीजों का ध्यान रखता है। लेकिन वह सब कुछ संकुचित दृष्टि से करता है। वह ऐसे विषयों का वर्णन वाणी से कर रहा है जिससे समाज उन्नत होने के बदले गलत शब्दों के प्रयोग से अवनत हो गया है। शब्दों के अर्थ ऊपर चढ़ाने से समाज ऊपर चढ़ता है और शब्दों का अर्थ नीचे लाने से समाज नीचे आता है, पतित होता है। शब्द को संभालने का काम साहित्यिकों का ही है। यह अंतर्सम्बन्ध टूटने का दूसरा कारण आयातित शब्दों का प्रयोग भी है। ''आज हम पुराने शब्द छोड़कर नये शब्द 'इम्पोर्ट' करते हैं। उसका असर हमारे चिंतन पर पड़ता है। हमारे चिंतन में विचार दोष आता है। हमको अपना चिंतन, ठीक ढंग से करना चाहिए, तभी हिंदुस्तान का अपना मौलिक चिंतन होगा। आज बाहर से इम्पोर्टेड शब्द लाते हैं और हमारी भाषा पर लादते हैं। परिणाम यह होता है कि हमारे जीवन में वह शब्द एसिमिलेट नहीं होता, हजम नहीं होता, एकरूप नहीं होता।''(12)

इसका परिणाम यह हुआ है कि हमारा साहित्य निस्तेज हो गया। आयातित चिंतन से शक्ति नहीं बन पा रही है। जीवन के सिद्धांत–शोधन के अभाव में हमारा चिंतन कुंठित हो गया है। आज साहित्य ठहरा हुआ दिखाई देता है। रचनाओं में पिष्टपेषण की वृत्ति अधिक दिखाई दे रही है। ''इन दिनों भारत में हमने शब्दशक्ति खोयी है। गांधीजी आये, उसके पहले लोगों में यह भावना थी कि राजनैतिक नेता जो बोलते हैं, उससे भिन्न अर्थ उनके मन में होता है, यानी वे द्वि–अर्थी बोलते हैं। गांधीजी आये तो नया तरीका आरंभ हुआ। उन्होंने जैसा मन में है वैसा बोलना शरू किया, यानी दोनों में कोई भेद नहीं। लोगों के मन में विश्वास हुआ कि गांधीजी जो बोलते हैं, वही अर्थ उनके मन में होता है। गांधीजी ने तप करके शब्द की प्रतिष्ठ बढ़ाई, कायम की। आज भारत में कोई नेता नहीं है, जिसके शब्द पर लोगों का पूरा विश्वास हो। जो बोलेगा वही अर्थ अगर मन में हो, तो राजनीति में वह मूर्खता

मानी जाएगी। दिखाना एक बात, करना दूसरी बात और मन में तीसरी बात होगी, तो वह उत्तम राजनीतिज्ञ है, ऐसा आज माना जाता है। लेकिन जहां शब्द–शक्ति गयी, वहां अमोघता नहीं रहती। फिर वहां शस्त्र–शक्ति के बिना गति नहीं रहती। जहां शब्द–शक्ति कम हुई, वहां शस्त्र–शक्ति जोर करेगी और वहां साहित्यिक फीके हो जाएंगे। क्योंकि साहित्य का सारा दारोमदार शब्द पर होता है। शब्द ही शस्त्र हैं और शब्द ही रत्न हैं। इसलिए शब्दशक्ति कुंठित हो, तो साहित्य निस्तेज होगा।''(13) आज हमें समस्याओं के अहिंसक हल सूझ नहीं पड़ रहे हैं। अनेकानेक कारणों से शब्द अपना अर्थ खो बैठे हैं। यह आगे की प्रगति के लिए बहुत बड़ा खतरा है। समाज में शब्दशक्ति की पुनर्स्थापना का काम साहित्यिकों का है। साहित्य और समाज के अंतर्सम्बन्ध को शब्दशक्ति और सत्य की आराधना से ही जोड़ा जा सकता है।

आज साहित्य और साहित्यकारों पर भी यही आक्षेप आ रहा है। राजनीति से प्रेरित साहित्य लिखा जा रहा है। साहित्यकार स्वयं राजनीति में पड़े हुए हैं। आज वे किसी न किसी संप्रदाय में बद्ध हैं। हिन्दी साहित्य में तो पूरे का पूरा वाद ही मार्क्स के नाम से चलाया गया, जिसे मार्क्सवादी, प्रगतिवादी, वामपंथी साहित्य कहा गया। साहित्य को संप्रदायबद्ध नहीं किया जा सकता।

साहित्य और समाज के पारस्परिक संबंध की उपेक्षा नहीं की जा सकती है। साहित्य और समाज का सम्बन्ध जटिल ही हुआ करता है। समाज के विभिन्न क्षेत्रों और परिस्थितियों में साहित्यकार के चेतन मन पर पड़े संस्कार ही अवचेतन मन में संगृहीत होते रहते हैं और उपयुक्त समय पाकर अभिव्यक्ति पाते हैं। किसी भी अवस्था में सामाजिक उपादानों द्वारा चेतन मन पर पड़े संस्कारों की अवज्ञा सच्चा साहित्य नहीं कर सकता है। साहित्य समाज का प्रेय और श्रेय है। एक ओर तो वह समाज से प्रभावित होता रहता है तथा दूसरी ओर समाज को प्रभावित करता है। साहित्य का साध्य एवं साधन समाज है। वैश्वीक युग में हमारी दृष्टि की संकुचितता ने 'समाज' शब्द को भी छोटा कर दिया है। आज साहित्यकार अपनी वैयक्तिक अनुभूति को विश्वानुभूति अथवा सकलानुभूति में परिवर्तित नहीं कर पा रहा है। इसलिए साहित्य और समाज के अन्तर्सम्बन्ध पर प्रश्नचिह्न लगा है। इस प्रश्नचिह्न को दूर करने का दायित्व भी साहित्यकार का ही है। समाज उसकी ओर आशाभरी निगाहों से देख रहा है।

संदर्भ

1 विनोबा साहित्य खण्ड 12 साहित्य और आत्मज्ञान–विज्ञान पृष्ठ 75
2 विनोबा साहित्य खण्ड 12 साहित्य और आत्मज्ञान–विज्ञान पृष्ठ 3
3 हिन्दी साहित्य : युग और धारा : कृष्णनारायण प्रसाद 'मागध' पृष्ठ 5
4 विनोबा साहित्य : खण्ड 12 साहित्य और आत्मज्ञान–विज्ञान पृष्ठ 3
5 विनोबा साहित्य : खण्ड 12 साहित्य और आत्मज्ञान–विज्ञान पृष्ठ 4
6 मुंशी प्रेमचंद : साहित्य का उद्देश्य : पृष्ठ 24–25
7 विनोबा साहित्य : खण्ड 12 साहित्य और आत्मज्ञान–विज्ञान पृष्ठ 23
8 विनोबा साहित्य खण्ड 12 साहित्य और आत्मज्ञान–विज्ञान पृष्ठ 78
9 विनोबा साहित्य खण्ड 12 साहित्य और आत्मज्ञान–विज्ञान पृष्ठ 57
10 विनोबा साहित्य खण्ड 12 साहित्य और आत्मज्ञान–विज्ञान पृष्ठ 10
11 विनोबा साहित्य खण्ड 12 साहित्य और आत्मज्ञान–विज्ञान पृष्ठ 10
12 विनोबा साहित्य खण्ड 12 साहित्य और आत्मज्ञान–विज्ञान पृष्ठ 45
13 विनोबा साहित्य खण्ड 12 साहित्य और आत्मज्ञान–विज्ञान पृष्ठ 49